योऽर्थो हृदय संवादी तस्य भावो रसोद्भवः
शरीरं व्याप्यते तेन शुष्कं काष्ठ मिवाग्निना॥

– भरत मुनि

दमित आकांक्षाओं का गीत

अम्बिका दत्त

बोधि प्रकाशन
जयपुर 302015

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, 2000
आवरण चित्र : मेधातिथि
कवि चित्र : रविकुमार, कोटा
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, 64, शान्ति निकेतन कॉलोनी,
किसान मार्ग, बरकत नगर, जयपुर - 302 015
दूरभाष : 0141-591087, 590284
शब्द संयोजन : सतीश कुमार सोपरा
मुद्रण : पाठ्य भाग : प्रिण्ट-ओ-लैण्ड, हवा सड़क, जयपुर
मुद्रण : आवरण : कमला आर्ट प्रिन्टर्स, जयपुर
मूल्य : 100.00 रुपये
ISBN-81-87697-35-0

अनुक्रम

विकल्प

किनारा छूटे बहुत देर हो चुकी
हम धार में नहीं हैं-
ठहरा हुआ जल चारों तरफ अगाध
जैसा हमने चाहा था - प्रेम में
जब हम थके नहीं थे
फूले हुए दम से हाथ-पाँव हिलाना
और बचने की कोशिश का ख्याल
डूबने के और नजदीक ले जाते हैं
बह जाने की आशंका नहीं
खतरा डूब जाने का है
तैरना न जानने पर डूबना कोई
शर्मनाक घटना नहीं-
पर अफसोस-
तैराक के डूबने की पारंपरिक त्रासदी!
गहन अतल में जाने/जानने की साध
क्या इस तरह से पूरी होती है ?
समय, यह सचमुच
मित्रता खोने का नहीं है
विश्वास करने का है
अपने विश्वसनीय होने का है।

•

बुरे बखत में

गहरी नींद में
पलकों के पास तिरता है थोड़ा-सा उजास
कोठे में हूं-
कोठे के बाहर कोठा
कोठे के बाहर तिबारा है
उससे आगे दालान फिर
गलियारा है- एक लम्बा
फिर पोल- एक बड़े दरवाजे वाली
वहां कुण्डी खटकाई है किसी ने-
बहुत देर लगेगी-
इस बुरे बखत में
उसकी आवाज मुझ तक पहुंचने में

खोलने से पहले

पुराने मकानों में से सुनाई देती है
कोई आवाज, अस्पष्ट गूंगी
शब्दहीन कविता सी
बरसों से बन्द पड़े बहस-मुबाहिसे
सीले-अंधेरे में
सर्दकर अकड़ाए
अजीब सी आवाज करते
पुराने किवाड़
खड़-खड़ाकर बजती
जंग खाई अर्गलाऐं
किसी आले-दिवाले
ओने-कोने में जमी है
कभी के बुझ चुके दिए की लौ से छाई कालिख
अगरबत्तियों के धुंए की तेलिया खुशबू
खोलने से पहले
बोलता है मकान
खोलने पर चुप हो जाता है
फिर- रह जाती है - एक गूंज,
स्मृति-कविता (!) शायद-
मकान सो जाता है।

•

होना न होना

होना उस रात का
रात में उसके
कई चीजों का इक साथ
न होना

होना वक्त का बुरा
होना शीत का
होना जिंदा और बीमार
होना कमजोर या बूढ़ा
बहना ठंडी हवाओं का
और फिर बरसात का होना

न होना - सूरज
घर इन्तजाम छत का
छाया और कपड़ों का
न होना दिन का
किसी घर का दरवाजा कोई/खुला न होना
बेबस और लाचार
न होना मौत का
मुश्किल और भारी
पूरी जिन्दगी से भी
इक रात का होना
न होना उम्मीद का

किसी का इन्तजार
न बिस्तर बिछौना ओढ़ना
सोना सब आदमियों का
और कुत्तों का गहरी नींद में

रोना सियारों का
रात काली
आसमान पर न होना कहीं
छोटे सितारे का भी
अकेले, बयाबाँ में
सब तरफ अंधेरा
यकसार होना
न होना आंखों में नींद
स्वप्न या आँसू
तब रोना ?
किस बात का रोना।

•

अगर तुम्हारा पेन्सिल छीलने का चाकू खो गया है

जरा सावधानी से काम लो
यदि तुम्हें बारीक लिखना है-
तो अपनी कलम अभी और छीलो

चीजें बहुत सारी हैं
कागज बहुत छोटा - जीवन की तरह
छोटे जीवन में जल्दी तो होती ही है

अगर तुम्हारा पेन्सिल छीलने का चाकू खो गया है
तब तुम्हें इन्तज़ार करना पड़ेगा
उनका -
जो मौन की व्याकुलता का अर्थ जानते हैं
कम लिखते हैं - या नहीं लिखते
बच्चों से प्रेम करते हैं - साधारण पिता की तरह
उनका भरोसा है-
तुम चाहो तो उनका इन्तजार कर सकते हो
उनकी उपस्थिति को इस्तेमाल कर सकते हो

तुम रबर की तरह
गलत चीजों को आहिस्ता से मिटाते हुए
अपनी सतह से
अनछुए अहसास की तरह

कुछ भी तो नहीं है तुम्हारे पास
सिवा बच्चे जैसी व्यग्रता के
कोई स्याही/रोशनाई भी नहीं
और डरते हो - जीवन के खत्म हो जाने से

यदि तुम रुकना नहीं चाहते
उनके आने तक -
तो, लो! मेरे पास है
एक पुराने ढब का चाकू
इससे मैं अपनी भौंथरी कलम छीलता हूं
इससे कुछ बन सके - तो बना लो
एक गोला - टेढ़ा-मेढ़ा
अगर उसमें रंग भरना चाहते हो
तो तुम्हें रुकना ही होगा
उनके आने तक।

•

सितम्बर - एक रात

इस उमस भरी रात में
न पियानो, न वायलियन, न बाँसुरी
न माउथऑर्गन
और न कोई धुन-

गली के बाहर बजी है
चौकीदार की तेज सीटी

एक खामोश चांद उग आया है
सुबह के अखबार की कतरनों पर
जो उसी तरह चमक रहा होगा
वहां -

दूर तक फैले समुद्र और
रेगिस्तान पर भी।

•

अड़तालीस घंटे पहले

खबर थी तूफान के आने की
और उसकी रफ्तार की भी
अड़तालीस घंटे पहले
कि कब तक पहुंच जाएगा यहां
बेरहम रौंदता – पलेटता हुआ

लोग भागे तो होंगे
थकी टांगों से
बिना हवा वाले पहियों की पुरानी साइकिल से
बसों की छत पर कितने लोग लद सके होंगे
कितने लोग चढ़ सके होंगे
देर से आने वाली पेसंजर गाड़ियों में
रेल की छतों पर इंजिन के धुएं के बीच
कांपते बैठे होंगे कितने से चेहरे–
अपने घरों को छोड़ते हुए – तूफान की कालिमा देख कर

क्या तूफान से तेज हो सकी होगी–
तीसरे दर्जे के डब्बों वाली लोकल ट्रेन को खींचते
भाप के इंजन की गति
जो रह गए होंगे...
उन्होंने क्या सोचा होगा।

•

अगर जा सकती होती

एक

अगर जा सकती होती
तो मेरी बेटी
वहां जरूर जाती
रात में जहां दीवाली की रोशनियों जैसी जगमगाहट है
और रोते दिखाई देते हैं आदमी
यह जानती नहीं – मानती भी नहीं
कि इतना उजाला होने पर
खुशी के बजाय रोना भी पड़ सकता है–
बच्चों, औरतों, पेड़ों, चिड़ियाओं को
यह जानती यह भी नहीं शायद
अंधा कर देती है/रोशनी जो होती है
ज्यादा नजर की ताब से।

दो

अगर वह जा सकती होती
तो जरूर जाती
छोटी चिड़िया उड़कर
अपने हलक में फंसी दहशत से
बेचैन, रोएं खड़े किये, ठिठके–
जल पांखियों के पास

वह कई बार फुदक कर उड़ती बैठती है
गर्दन मटकाती है - जाती है -
उस झाड़ी के पास-
जिस पर खिले हैं फूल
दुनियाँ में,
सिर्फ
अपनी बेमतलब खूबसूरती के लिए-
जा सकती होती तो वह
वहां भी जाती जरूर।

•

पार्क में बूढ़ा

कंधों पर से घिस गया है कुर्ता
पाजामे के घुटने निकल आए
पत्थर की बैंच पर बैठा बूढ़ा
मुस्कराता है-
बच्चों को फिसलते देख कर

शाम के बाद
रात होने से पहले
घर चले गए बच्चे-बड़े भी
अकेली ठंडी सीमेंट की फिसलनी पट्टी को
छूता है वह
चारों तरफ देखकर
चौकन्ना
एक बार चढ़ता है- ऊपर
सुखद आश्चर्य में भर जाता है
फिसलकर सकुशल नीचे आ जाने पर

फिर से पत्थर की बैंच पर बैठकर
खुश होता है
पुराने कुर्ते की जेब में
खोई हुई अफीम की डिबिया पाकर।

•

कविता

मैं अपनी कविता आप ही बोता हूं
काटता हूं और ढोता हूं
जब कविता में, मैं अकेला होता हूं

अब खोलूंगा सब खिड़कियां-दरवाजे
फिर उड़ती फिरेंगी
शब्दों की तितलियां, हवा के फूलों में
लोग फूले हुए गुब्बारों में तलाशेंगे
अपने सपनों का अर्थ

ओलाती पर लटकी सूखी बेल पर
हंसेंगी अमृत की फलियां

तड़की हुई सेम के बीच से
मुस्कराएंगे कुछ दाने
जो खाये नहीं बोए जाते हैं।

•

गर्म होती पृथ्वी पर

हम अकिंचन लोग
अकिंचन अपने ज्ञान से और अज्ञान से
अकिंचन – विज्ञान के समक्ष
हमने जाना पृथ्वी रुकी है – बंधी है
कई ग्रहों के आकर्षण बल से–
हम डरे - समाचारों से
कि वे ग्रह हिलने लगे हैं
विचलित हो सकती है – धरती!

हमने सुना सूर्य ठण्डा हो रहा है
हिमालय के अनिष्ट की आशंका से सहम गए हम
बौने लोग
असुरक्षा से दोहरे होने लगे
जागृतावस्था में ही शरण ढूंढने लगे
अपने खोए हुए दिनों में
पुरानी किताबो के गले-फटे पन्नों में
प्रलय की आशंका!
कि लौट सकते हम
अपने बचपन के दिनों में
जंगलों मे जनसमूहों के साथ जाकर
जलाते अग्नियां
देखते सूर्य को ठण्डा होते हुए

निर्विकार!
हिमालय को गलते हुए
ग्रहों को हिलते हुए
पृथ्वी को डिगते हुए
सरल नहीं है–
नींद के पार चले जाना
जागरण में
हमारे पात्रों की रिक्तता में
सब से पहले भरता है दुःख/अवसाद
हम कई बार देखते हैं–
पृथ्वी को ठंडा होते हुए
पर हम बचाना चाहते हैं
अपनी पतीलियों को ठण्डा होने से
गर्म होती पृथ्वी पर
खुले आसमान के नीचे।



पाषाण सरिता के तट पर

बहुत पहले
कोई नदी बहती थी यहां
सदियों पहले
धार-धार बहता था पानी
किनारे खड़े थे वृक्ष
घनी छाया वाले
अब क्या हुआ-
यह जो दिखती है
नदी है ?

धूप में चमकते गोल, काले पाषाण
कहीं रेत की धार
दोनों किनारों पर कटे हुए गार के कगार
नदी के आंसुओं का क्या हुआ ?

इस तपती काल नीरवता में
कहीं कोई पांखी नहीं है
क्या इस नदी के सूख जाने का
कोई साखी नहीं है

हमने सुना था
नदियां जल नहीं पीतीं
और वृक्ष अपने फल दूसरों के लिए रखते हैं

क्या वृक्ष खुद खा गए फल अपने
नदी खुद पी गई अपना पानी

यह कोई भौगोलिक घटना नहीं है सिर्फ
कैसी उदास, तप्त, तिक्त, मनहूस नीरवता है
समय सब अपनी सूनी आंखों से तकता है
कहो तो, नदी कहां गई।

•

पसरी सांझ

चिकने गोल लुढकने पत्थरों के बीच
हो, कहीं कोई गीलापन
या रेत के नीचे कहीं-
नदी की आत्मा का अंश
बचा हो -

किसी ठूंठ पर अंकुराता नवजात अरण्य
इस घोर एकान्त में/क्या कहीं दिखता है
नदी के आंसुओं का पोखर
सुनाई देता है -
सचमुच का अरण्य-रोदन
नहीं-कहीं कुछ भी नहीं है
सांझ के समय।
बिना अपना पसीने से भरा चेहरा पोंछे
छतनारी छाया के आंचल से
एकदम से अदृश्य अलोप हो गया
पूरा का पूरा सूरज
कहां गई - इस संध्या की सारी की सारी
रूपवान लज्जा

बिना परछाइयों का आँचल ओढ़े
सांझ, कैसी पसर गई है
पीली-पीली पूतना सी।

•

जंगलों में; इन दिनों

लग गई है इक जोगिया सी आग
जंगलों में इन दिनों
बज रहा है इक निर्द्वन्द राग
जंगलों में इन दिनों

हवा बजाती फिरे है सीटियां
आवारों लड़कों की तरह
घूमती है गलबहियां डाल
सुआपंखी - हरी, पत्तों से भरी डालियों के साथ
एकान्त कोने में खड़ा/ मूछों ही मूछों में मुस्कुराता है
कोई खुरदरा ठूंठ

सुस्ताकर फिर उठता है - तीसरे पहर
बूढा लकड़हारा
कमजोर हाथों से कुल्हाड़ी चलाता है
वक्त की सुनसान टहनियों पर

कोहनियों पर टिककर खड़े -
हाथों की हथेलियों के बीच चेहरा टिकाए
बैठी है शाम/पहाड़ियों पर
कुछ सोचती सी
और दूर-दूर तक फैले हैं उसके सुरमई बाल
जंगलों में इन दिनों।

लड़कियाँ

पागलों की तरह
जंगल को टा-टा करती
गुजर जाती हैं/रेल में बैठकर

आदमी की आंखों में तलाशती हैं
खोए हुए सितारे
आंख भर आती है -
लकड़ियां चूल्हे में धरते हुए
नसीहतें याद करके - लालटेन जलाते वक्त
देहरी में मत बैठ बहना!
चोटी मत गूंथ - बाल मत काढ़ सांझ पड़े
मन को अपनी अंगुलियों में लपेट
जूड़े में बांध लेती हैं
ठसी पर सिर टिका लेटती हैं
लेटे-लेटे हाथ बढ़ा लालटेन मंदी करने के बाद
सांस खींच/सोने से पहले
चुप-चुप कुछ सोचती हैं लड़कियां

नींद में सोए हुए होते हैं सब,
तब दूसरों की नींद खुल जाने के डर से
अंधेरे में जागती हैं लड़कियां
गुमसुम गुनगुनाती हैं
अकेली, अपने टपोरों पर सपने बुनती हुई।

•

कमीज़

क्या बचा है अब इस कमीज़ में
जो तीरे पर से फट चुकी है
यह मरम्मत के काबिल नहीं रही
कोई कमजोर कंधों
और
पतली टाँगों वाला दर्जी भी
नहीं सिलेगा इसे
पर माँ !
पुराने चश्मे से तलाशती है वह जगह
जहाँ सीवन ठहर सके
सुबह लड़के को स्कूल जाना है
मैं मूर्ख
इस फटी कमीज़ में तलाशता हूँ अपनी कविता

मेरी कमीज़ की कंधों पर मरम्मत
एक अर्से से नहीं हुई।

साबुन

भीगता हूं
गीली सतह पर घिसता हूं मैं
फूलता हूं
फींचते, कूटते, पछीटते वक्त
कपड़ों की तहों के बीच
जो कुछ सहता हूं–
उसे मैं ही जानता हूं
तुमसे कहां कहता हूं–

पानी में खंगाल कर बहा देने
निचोड़ कर सुखा देने के बाद
तुम सोचते हो नहीं रहता हूं मैं
तो सुनो!
तुम्हारी पेंट बुशर्ट में
पहने हुए कपड़ों में
सफाई की तरह चमकता हूं मैं
गर्म प्रेस के नीचे दबकर
कड़क हुए-कालर में
दमकता हूं मैं।

•

सेल

सारे शहर में, गलियो में, घरों में जाता है
धीमे-धीमे सहलाता है
सोई हुई, अजन्मी, कम जरूरी चाहतों के खरुंट
सुलगाता है - एक मीठी सी जलन भरी चाह
अपने मुलायम से दिखने वाले नृशंश नाखूनों से
खरोंचों से चमकते खून को देख कर मुस्कराता है
भोलेपन से
खनखनाता है गुल्लक में रखी रेजगारी
गिराकर फोड़ देता है उसे
ठहाका लगाने के बदले-
एक अदृश्य हाथ

उसने खोल दिया है सब कुछ
सब चीजें बिकाऊ हैं
सब सस्ती-भदरंग
टिकाऊ नहीं हैं।

बून्दी

पहाड़ियों पर से उतरकर आई होगी
कोई वन सुन्दरी
सिर पर सजाए मोरपंख
कान में धारण किए मोलसिरी का छोटा फूल
हाथ में कदंब का
कमर पर लटके होंगे
लाल-श्यामल पलाश के दहकते गुच्छे
बजती रही होगी - पावों में
पैंजनी-बिछिया की तरह
बबूल की सूखी फलियां
किसी ने देखा न होगा
उसका उतरना
बरसाती नाले की तरह दौड़ते हुए

कभी शिकारी राजा गया होगा
आखेट के लिए
हांका लगाए बैठा होगा
किसी बुर्ज पर
जंगली हिरनियों के इन्तजार में
उसके मन में कौंधी होगी कई बिजलियां
और छोड़ा होगा तीर निशाना साधकर
तीर से घायल गिर पडी होगी - वन सुन्दरी

बिखर गई वनश्री!
उसके गठीले पावों को छूते हुए
सहम गए होंगे शिकारी कुत्ते
ठिठके रहे होंगे - राजा के आने तक
वह चीखी नहीं/कराही होगी
होश में आने के बाद

राजवैद्य ने उबाला होगा कटुताओं का काढ़ा
और मृदुताओं का अवलेह मिलाया होगा उसमें
जिसे पीकर मुस्करा सके सुन्दरी
राजा की तरफ देखकर

सुन्दरी झरोखों में बैठकर भी उदास रही
पहाड़ियों को देखते हुए
उड़ती हुई बदलियों को देखकर
शांत नीले जल से भरी झीलों को देखकर
सिहरती रही
महल के गर्भगृहों की रहस्यमयी कथाएं सुन-सुनकर
गिराती रही अपने वनाभूषण
वे गिर, अटके फटे
किले के कोट के कंगूरों पर फहराते रहे
दीन करुणा के प्रतिरोध की अन्तिम पताकाओं की तरह

लोगों ने देखा
पहाड़ों को निर्वसन होते हुए
नालों को तरसते हुए पानी के लिए
धौंक कटवा-कटवा कर कोयले करवा दिया जंगल/राजा ने
तो भी न बचा सका अपने आपको
ऋतु के शीत प्रकोप से
वह खो गया
लोगों ने देखा
सूखती झीलों के बचे पोखर में जमी काई पर

छितरा पड़ा है-
उस वनसुन्दरी का हरित पट
उसने जो छुड़ाई होगी
राजा की लगवाई मेंहदी की रचावट
एड़ियां रगड़-रगड़कर
वह बहती है - केसरिया खाल में
महकती है उसकी उपस्थिति के अहसास से
हवेलियां/हताइयां
सीलन भरे बन्द पोथीखाने

बूढ़े लोग कहते हैं - यह शहर
जो था कभी छोटी काशी
इसे क्या हो गया है
परजा सो गई उसकी
राजा खो गया है।

•

खण्डहर महल का स्नानागार

टूटी हुई जाली के झरोखे में पड़ी है
एक डिबिया काजल की सूखी हुई
बीते समय की अभिसार स्मृति-थकान की तरह
व्यर्थ है अब रोना
इस काजल के लिए
वह आंख ही न रही
जो आंजती इसे
अब कौन है जो आंजे अंजन धूल का
जब किसी दिन ढहेगा यह खण्डहर
दब जाएगी डिबिया भी धूल-धूसर में
सभ्यताओं के दबे हुए कई अवशेषों की तरह
दबी हुई बस्तियों की खुदाई में
कभी जब निकले-
पुराने नलों की टूंटियां-
टूटे हुए टब के पलस्तर के टुकड़े
टूटा हुआ फुहारा-
या धुंधली सी कोई कांच की किरच
तब शायद अन्दाजा लगाएंगे पुरातत्वशास्त्री
कि किस तरह-
अकाल के दिनों में बनवाया गया यह महल
और किस तरह मिसमार हुआ
खुशहाली के दिनों में।

•

दमित आकांक्षाओं का गीत

बचा क्या है- अब खोने के लिए
जिसे खोकर कुछ पा सकूं
दास-मैं-दास
दासानुदास - चाकर सदा का
बची है बस एक आकांक्षा - शेष
जूठे प्याले के पेंदे में बची थोड़ी सी शराब की तरह
रह पाऊं कभी -
उस परम सुन्दरी, पद्मावती, रुपवती रानी की अर्दली में
एक क्षण भी पा सकूं कभी
उसका दृष्टि पासंग
तो हो धन्य जन्म हो सफल मेरा
भाग्य से यदि पा सकूं कभी
उसके जूठे बर्तन धोने, साफ करने की नौकरी
कितना गद्-गद् अह्लादित कर देने वाला है यह सपना
महारानी की जूठन-छूने-खाने का रोमांच

हो सकूं कभी
उसके स्नानागार के परिवृत्त में नियुक्त
उसके उतारे वस्त्र, धोने समेटने के लिए ही भले-
एक बार नथुनों में भर सकूं - वह देह गंध-घुटती हुई सी
ओह मैं मूर्छित हुआ सा जा रहा हूं
गीत के अन्तिम प्रहर से पहले ही

जा सकूं उस शयनगृह में कभी - नि:शंक
जो कल्पना में है -
देख सकूं वह शैया
चुनूं उस पर बची हुई सलवटें अभिसार की
रात के प्रथम प्रहर में उन्मत्त, किलकते थे जो
उपेक्षित पड़े मदिरा पात्र
उनमें बची जो घूंट-आधी, अधूरी
पीकर उसे लुढ़का सकूं वह पात्र बस एक बार लात से
अपनी नसों में अनुभव कर सकूं - नशे का दम्भ

ओह! एक बार
स्वप्न में ही जा सकूं - निर्द्वन्द
सूने शयनागार में - शीशमहल में
अकेला नाचूं -
अपने अनेकानेक प्रतिबिम्बों के साथ।

•

सरकारी बाग में प्रेम

एक जोड़ा नया
सहमा सा घुसा सरकारी बाग में
तलाशने वह एकांत
जहां निर्भय हो सके

चहल कदमी से टूटा
निर्जन उद्यान का
पत्ते चुरमुराए
दबकर उनके पावों से

खिले हुए फूलों को बसाया उन्होंने
अपने जीवन में
भविष्य के सपनों की तरह
निरे बतियाते रहे घर के बारे में
घर को सजाने के बारे में
निर्भीक होने की कोशिश में
प्रेम करते से
पर हंस न सके वे
आलिंगनबद्ध होने से पहले
किसी आहट से।

•

ऋतुभ्रम

मौसम का जब छिलका उतरा था
पिछली बार
तो लगा था
यह अभी नया रहेगा कुछ दिन
शायद आखिरी हो
इसके बाद भोगते रहेंगे
ऋतुओं का सत्व!

अंश-अंश धुंधलाते
'पेट्रोमेक्स' के 'मेण्टल' की तरह
धूमिल होती गई उसकी चमक
हर जगह से
पेड़ों
पहाड़ों
आदमियों के चेहरों से।

•

परिधान

"मैं क्या पहनूं, कि सब देखें मुझे"
तुम कुछ पहनो ऐसा -
कि सब देखें तुम्हें -
सब देखें सिर्फ तुम्हें
तुमने जो पहन रखा है
वह तनि ओछा है
कल सिलवाया होगा
इसे कल मत पहनना
और छोटा पड़ जाएगा
आदमी बढ़ता रहे तो
कपड़े छोटे होते रहते हैं

पंख धारण करो
हो आओ कभी पुराने इमली के बाग में
पहनो कभी, बदलियां - रंग बिरंगी
याद है - फूल खिलने के दिनों में
तुमने कुछ पढ़ा था, लिखा था
तितलियों के पंखों पर
बेरहम दुनिया को भुलाकर
तुम्हारे रोम-रोम में तब
जैसे सज गई थी - बिजलियां
धारासार रोए थे तुम/उसे उतारते हुए

कितना हसीन और खरा था तुम्हारा रोना
इस बिना धुली, सलवटों भरी मुस्कान के मुकाबले
तुम हो सके तो फिर से एक बार पहनो
बदलियों के रंग
जिनमें से बिजलियां झांकती हों

आने वाले दिनों के लिए
परिधानों की कल्पना करना व्यर्थ है
तब तक कट चुके होंगे – इमलियों के बाग
आसमान में किसी न्यूट्रान बम के धुएं के बीच
खो चुकी होंगी रंगीन बदलियां
सब धरे रह जाएंगे
अभेद्य कवचों में बंधे प्राणहीन, सूरमा!
उनके खालों के दस्ताने भी बनाने वाला
कोई नहीं बचेगा –
क्या जाने बचे रहो तुम
तब तुम याद कर सकोगे
पहन सकोगे – पंख, बदलियां ?

•

बिसाती का सपना

बिसाती के सपनो में दौड़ता है
एक मझोले कद का घोड़ा
उसे सफर करना होता है ओछे टट्टू पर बैठकर
सप्ताह के सातों दिन हाट है
हाट में सपनों की तरह आती हैं लड़कियां
कंघी, रिबन, चोटी, काजल खरीदने
उनमें से किसी एक के सपने में जाना चाहता है बिसाती

साफे की फेंट में बंधा है एक छोटा कांच
कांच में मुंह देखकर मूंछे संवारता है
एक सपनीला जवान
उसकी आंख में जो तैरता है
वह क्या है – जानता है बिसाती
बिसाती का मन हुआ –
वह भी कांच देखे –
उसमें दिखाई दे शायद – उड़ना घोड़ा
जिस पर बैठकर जा सके वह दूर-दूर की हाटों में

पर इस बार सौदे में कमी है – छोटे कांचों की
अपने मन को ही मसोस लेता है बिसाती
अब तो हाटों में कम आने लगे हैं लोग
दूर चले गए हैं – मजूरी काम पर
ज्यादा पैसे जुटते नहीं हैं अब

लौटते हुए सोचता है बिसाती
इस बार मूंगफली नहीं है
गन्ना नहीं तो गुड़ भी क्या होगा
जिन्दगी में कभी खारी-फीकी गाजर भी चुभलानी पड़ती है

धीमी चाल से उतर रहा है अंधेरा
बिसाती छोटे छोटे टट्टू पर बैठकर
उड़ जाना चाहता है
एक मझोले कद के सपने में।

•

विवाह

एक

किसी ने कहा – ढोल बजने दो
किसी ने टोका – रोको इसे, बंद करो, क्या बेहूदगी है
दूसरा कोई गाना गाओ
लोग गाते रहे –
ढोल बजता रहा
रह-रहकर दमकता रहा नकली हीरों का हार
काली 'मेक्सी' वाली लड़की के गले में

दो

किसी ने कहा – जंगल में जाना
और एक पका हुआ फल तोड़कर खा लेना
उसके बीज से एक बच्चा जनना
किसी ने कहा – नहीं!
यहीं अपने आँगन में लगाना
एक बिरवा –
उसे सींचना
उसकी छाया में बैठना

क्या फिजूलखर्ची है
किसी ने कहा –
कोई बोला –
शादी बार-बार थोड़े ही होती है।

किसी सपने के लिए

नाव की तरह हो गई है बीच में से
खाना खाने की पुरानी मेज
भूखे रह जाते होंगे
किनारों पर बैठे लोग
चमकीले फर्नीचर वाले दुत्कार कर भगा देंगे उसे
उनके पास कहां है फुरसत – पुरानी मेज की मरम्मत के लिए
तेज चलता है उनका रद्दा
सूखी लकड़ियों की छाल के पतले छल्ले उतारता हुआ
अन्दर से निकलती आती है
चिकनी-सपाट सतह पर तैरती लकड़ी की अंतरंग महक

वहां तो जाकर लौटना ही है
मगर वहां जाना पड़ेगा/जरूर
और जाना पड़ेगा वहीं
बदन को आगे झुकाकर पीछे खींचते हुए लोगों में से
किसी की नजर पड़ जाए उस पर
उनकी चुराई हुई नजर में तैरता दिख जाए कोई औजार
बचे हुए वक्त के लिए
नाव बन चुकी मेज को दुरुस्त कर सकने का सपना।

•

अन्तिम कविता

चीजों, शब्दों, ध्वनियों से
कुछ न निकले/बने जब

''कविता सिवा बातों के क्या है
बातों से क्रान्ति नहीं होती''

इसीलिए कविता करना बन्द करदें कवि
और कविता को खारिज करदें लोग

तब आखिरी कविता तो लिखी ही जाएगी न
सब कुछ समाप्ति के पहले
सजग कवि के द्वारा – मृत्यु के बारे में
जब चुक रही हो कविता जीवन में
मृत्यु पर कविता लिखना आसान नहीं होता

मृत्यु पर एक पूर्ण – सम्पूर्ण कविता का न होना
क्या कहता है ?
क्या जीवन अभी शेष है
कविता बाकी है ?

•

कब्र सींचते से

एक टोपी फटी हुई
धुंधलाया चश्मा
सूखा पेन
मुरझाए हुए फूलों का गुलदस्ता
एक प्यास अटकी हुई
पानी और गले के बीच कहीं
निस्पंद, ध्वनिहीन, निःशब्द
कुछ बूढ़े
खराब, बन्द घड़ियां लिए
किसी राह चलते से वक्त पूछते
वक्त काटने के लिए
सोचते
सब कुछ बदल जाए शायद
मौसम की मेहरबानी से
बतियाते – कब्ज के बारे में
उदास।
रेंगते शिथिल मनों से।

•

दाखिले का गीत

वन्द हो गया छुट्टियों का आकाश
विद्यालयों के दरवाजे खुल गए हैं
बच्चे सजाए जा रहे हैं
योद्धाओं की तरह
पहुंचाए जा रहे हैं तस्वीरों वाले कमरे में
बच्चे पहचानेंगे तस्वीरों में जड़े महापुरुषों को
शान्त रहें
चल रहा है दाखिला ॥ 1 ॥

ओ हो कितनी गर्मी है इस साल
जून के महीने में
आतुर अभिभावक समवेत स्वरों में
गा रहे हैं
दाखिला! दाखिला!! दाखिला!!! ॥ 2 ॥

•

प्रार्थना गीत : अभिभावकों के लिए

ओ अधीर माताओ - पिताओं
बच्चों को जल्दी से जल्दी सब कुछ सिखा-पढ़ा दो
लिखा-पढ़ा कर बना दो आदमी जैसा आदमी
खबरदार!
होगा बुरा अगर रहे बच्चे
बहुत दिनों तक बच्चे

ओ व्याकुल माता-पिताओं
क्या नहीं खुला है कोई स्कूल
तुम्हारे लिए
जहां तुम जा सको
जाकर जान सको
बच्चे स्कूल जाते हुए रोते क्यों हैं
बच्चे इतने डरे हुए क्यों हैं
क्या चाहते हैं बच्चे डरे हुए
वे कहते कैसे हैं उसको।

•

प्रार्थना गीत : बच्चों के लिए

जो हैं कमजोर बच्चे
जो गन्दे बच्चे हैं
जो हैं धैर्यवान माता-पिता की संतान
जो हैं दीन-दुखी, निबल-विकल
जो अटके हैं, भूले-भटके
वे जाएंगे
नगर निगम की गऊशाला में पढ़ने
वे सीखेंगे – सीख जाएंगे
वो सब कुछ
जो लिखा नहीं है किताबों में, उनकी
वे सीख जाएंगे सभी सवाल
उत्तर नहीं जानते जिनके माट्साब
वे जान जाएंगे परलौकिक विद्या

पानी बरसेगा छम छमा छम
छत पर होकर कमरों में आ जाएगा
बस्ते माथे पर धरकर नाचेंगे वे
बच्चे भीगते हुए
सड़क पर बहती नदी में
ताक्, धिना धिन –
छपक–छपा–छप–छपक–छपक।
लौटेंगे अपने घर को भूखे बौने
राक्षसों की तरह सब कुछ खा जाने को।

•

वह जब भी आया

एक

वह जब भी आया
और भी कंपकंपा गई थी शाम
और भी गहरी हो आई थी रात
और भी तीखी लग रही थी हवा
मौसम भर गया था और भी
उमस, बैचेनी, घबराहट से
वह जब भी आया
हमें रौंदता, बिखेरता, अव्यस्थित करता चला गया

उसने सिर उठाया जब भी
धर्म की संकीर्ण गलियों से
शर्म से झुकने लगी आंखें मेरी
मुझे घिन सी हुई अपने हाथों से
वह उगा जब भी
धर्मग्रन्थों के किनारों पर
कमजोर था बहुत
कुकुरमुत्तों की तरह
वह जब भी आया
मजहब के तंग दरवाजों से
आते ही बरस पड़ा – बस्तियों पर, बाजारों पर
बंद हुए सुनसान बाजारों पर

वह जब भी आया
उसने जहर घोल दिया हवाओं में।

दो

उस दिन सुनसान पड़ी थी
कस्बे की गलियां
थी उदास, बच्चों की गोली कंचो वाली 'पिल्ल'
सभी सड़कों पर घूम रहे थे
पुलिस के सिपाही सतर्क/बेफिक्र
सुनसान कहीं
अपनी टांगों में सिर दिए
चुपचाप पड़े थे
आवारा कुत्ते तक
सब कुछ था सुनसान - खुला हुआ
बन्द थी सिर्फ आमद रफ्त।

•

जब हम बेहोश हुए

हवा में असर था उसका
जब हम निर्दोष थे
बच्चों की तरह
उसने हम पर आक्रमण किया
बड़ों समझदारों के तरीके से
तीव्र मानसिक उत्तेजनाएं!
वह आक्रमण करता रहा
हम निर्दोष थे – अबोध भी

अपनी पहचान के लिए
उसने
हमारी पगथलियों के नीचे धरे
सुलगते कोयले
वह चुप नहीं रहा
अपना असर देखने के इन्तज़ार में

हम क्या समझते
बन्द क्यों हुए स्कूल
मर गए बाजार
सड़कें सो गई
पता नहीं कहां गुम हो गया
पूरा का पूरा नगर
तिलस्म की तरह

लोग डोलते फिरे
सिर्फ अपने आँगन से कमरे तक, इधर से उधर
अकारण चिढ़ने लगे
बेवजह/डांटने लगे बच्चों को
अपने घर में चीजों को रख कर भूलने लगे
बिना किसी तलब के गए
अपनी पत्नी के पास
खीझने लगे – क्या पता – अपने आप से
मां-बाप से ?
हम क्या समझते।

संधों में से

इतिहास के झुटपुट झरोंखों से
झांकते हैं
अनजान, झुर्रीदार, कमजोर पीले चेहरे
वे काढ़ते रहे कशीदों की बेलें
वक्त की सादा चादरों पर -
फुरसत की तरह
वे ही बनाते
उजला, तीखे नाक-नक्श वाला
उम्दा छपी हुई किताब के हरुफों की
तरह साफ कोई चेहरा
एक
जो उनका नहीं होता।

•

डर

जब घिसा जा रहा था चाकू
पता नहीं किसके लिए
मुझे सिर्फ अपनी पड़ी
मैंने डरकर अपनी गर्दन पर अंगुलियां फिराईं
मसलकर कुछ बत्तियां उतारीं
शरीफाना ढंग से कटे नाखूनों में मैल भर गया
मैं डरा – अपनी हैसियत के लिए
चाहा – अपना बीमा करा लूं
बीमे से, मरने के बाद
घर वालों को धन मिलता है
डर तो दूर नहीं होता।

•

त्यौहार

त्यौहार का उल्लास उमगता है बच्चों में
बड़े सिर्फ एक अभ्यास दोहराते हैं
अपनी शुभकामनाओं के उत्तर लौट आने की प्रतीक्षा में

अमावस्या के दिन
जब न्यूनतम होगा चन्द्रमा का आकर्षण
जल पर
तब तुम्हें स्मरण करूंगा
मैं
किंचित आवेश में

सदैव की तरह
मेरा बधाई संदेश मिलेगा तुम्हें
त्यौहार गुजर जाने के बाद
चन्द्रमा के बढ़ते हुए दिनों में
कुछ भी न बचा होगा तब तुममें
जो लौटकर मुझ तक आ सके
उसकी प्रतीक्षा में...।

•

नंगे पांव

कोई आदमी नंगे पांव दौड़ता है
और दुनिया लांघ जाता है
वापिस लौटता है
सिर पर टोपी लगाए

किसी के घर से निकलने से पहले
बाहर निकलती है
उसके नंगेपन की खबर
लोग बहस करते हैं-
नंगे सिर रहना बुरा है या नंगे पांव
अभी तक तय नहीं है
दरअसल नंगापन क्या है
चिन्तन की निस्सारता
या भूला गया अध्यात्म

शरीर को ढकने से
मतलब छिपना है मिटना तो नहीं

सिर का नंगापन ढका जाता है
टोपियों से सुन्दर भी है जिनकी
[illegible] के लिए [illegible] हैं
[illegible]
[illegible]।

एक फौजी अफसर
या कोलतार की सड़क बनाता हुआ मजदूर
सभ्यता के जनरल ने डपट कर कहा
खामोश नारव्वांदों!
तहजीब पर बात करने से पहले
अपने सिर पर चमरौंधे की टोपी पहनो
और कागज पर अपने अंगूठे की छाप बनाओ।



मेला : एक

लोगों ने कहा
दुनियां एक मेला है

मेले के तो दरवाजे पर ही शोर है
खींचता है मेला अपनी ओर
इसमें कई रंग हैं
कोई इस दुनिया में आए
और मेले में न जाए!

मेले में कितना कुछ है
खरीदने के लिए
पैसे न हों तो
देखने के लिए

खिलौने मँहगे है-
बच्चों से कहो – खिलौने वाला लुटेरा है
उन्हें लुटने से बचाओ
कहो – मेला यही आखिरी नहीं है
बड़े मेले में चलेंगे
उसमें से लाएंगे सामान
जी हल्का रखो
जीवन बहुत बड़ा है।

•

मेला : दो

कोने में सिकुड़ा बैठा है खाती
लकड़ी की छोटी गाड़ियां लिए
चमकीली रंगीन कारों में से उतरने वाले बच्चे
क्या उधर जाएंगे

मिट्टी की चाकी में पिसने से बचा कुम्हार
कब तक इन्तज़ार करेगा
हाथ से अनाज पीसने वाली लड़कियों का

मेले से लौटना होगा खाली हाथ
खाली जेब थके पांव!

जिन्होंने कहा था – दुनिया एक मेला है
वे बैठे थे चकरी में, सबसे ऊपर
उन्होंने यह तो नहीं कहा था
चकरी भी है मेले में

चकरी में घूमना रह गया।

•

स्वाद

डेढ़ रुपए में एक पाव ककोड़े
कितना हिस्सा आएगा मेरी थाली में ?
इसे एक गास में गड़प लूं
और बाकी रोटियां रुखी ठूंसूं ?
या आखिरी कौर तक चलाऊं
छुआ-छुआ कर खाऊं

कौन बता सकता है
स्वाद - जीभ का आनन्द है
अथवा विचार का दुःख
तुम्हीं बताओ
एक कड़छी सब्जी के रसे से
कितना रसमय हो सकता है भोजन या जीवन

बेकार पड़े स्वाद के चक्कर में
इससे तो अच्छा होता
छाछ में बेसन घोल लिया होता
जिन्दगी पतली भले ही होती
गले से नीचे तो उतरती।

•

सूने में सड़क

पंछियों के साथ आई होंगी
तगारियों में माथे पर धरे
अपने पांव
गाती हुई लड़कियाँ

लड़कियों ने मिट्टी बिछाई होगी
लेपा किया होगा
सड़क कूटते बुलडोजर के बड़े पहिए पर से
मिट्टी छुड़ाई होगी
पानी की बाल्टियां डाल-डाल कर
खंचियों में/झाड़ियों की छोटी छाया में
बैठकर दुपहरा किया होगा
मुस्कुराया होगा बुलडोजर का ड्राईवर
बीड़ी के धुएं में से आंख मारकर
खिल उठी होंगी/खिलखिला उठी होंगी लड़कियां
किसी अजनबी के गुजरने पर

राजा या मंत्री के आने से पहले
बन गई होगी सड़क
एक बीड़ी पीने जितनी सी देर में
किसी कुंआरी लड़की के पेट सी
सुघड़-सलोनी, चिकनी-सपाट
इकहरी-पतली, चमकदार

कभी कोई रेवड़ बकरियों का/भेड़ों का
या निढाल कोई साइकिल सवार
इस पर से गुजरे तो गुजरे
वर्ना पड़ी है यह
बाजरे की रोटी के टुकड़े सी
काली, खुरदरी – टूटी हुई
किसी कौवे के इन्तज़ार में।

•

सुकाल

कितनी ही कविताएं कुम्हला गईं
मुरझा गए कवि
अखबारों के पूरे के पूरे पृष्ठ खाली पड़े रह गए
निष्क्रिय हैं - सरकारी बड़े अफसर
कई जीपों के टायर
घिसने से बच गए

पूरा का पूरा उजड़ गया जंगलात का महकमा
इस साल अकाल नहीं हुआ
भगवान ने अपने चाहने वालों की नहीं सुनी
दुश्मनों के इरादे फले
चुनाव हैं इस साल
अकाल नहीं है
राहत किस मद में दें
मुख्यमंत्री चिंतित हैं
लोगों को सोचने की फुरसत है।

•

बैंगन

वेद क्या कहते हैं और विज्ञान क्या
मैं नहीं जानता
सभ्यता के विकास मे तुम्हारा स्थान कहां है
मैं सोचता हूं तुम थ अवश्य
सृष्टि में आयोडीन की खोज से पहले
तुम थे अवश्य
उस समय से पहले
जब मनुष्य ने मोटे कंटीले पत्तों
और
ठिगने बेडौल पौधों के बीच से
तुम्हें चुना होगा

सचमुच महान हो तुम
उन बच्चों की तरह
जो गरीबी में भी गदबदे होते हैं
और उदारता से चमकते हैं
कुम्हलाने से पहले

तुम्हारे न होने पर –
दुश्मन सा बर्ताव करने लगे थे हमसे
गोभियों के फूल और मटर की फलियां
तुम आए बाजार में
हमारी जेबों पर मेहरबानी करते हुए

किस तरह इज्ज़त बचाई तुमने हमारी
खुद सस्ते होकर
अगर न आए होते तुम
तो हमारा तो भुर्ता ही बन गया होता
भकोसते – कोरे ही, ज्वार-मक्का बाजरे की
रोटियों के टुकड़े –
सच कहें
तुम्हारे आने से
हमारी आंख में आंसू भर आए हैं
हलक में फंसी रोटी अन्दर उतर जाने से।

•

पुराने जूते की याद

मरी हुई भैंस देखता हूं
तो अपने बचपन का जूता याद आता है
मेरे पिता की पतली जेब
और बिना मौजे वाले मेरे पांव
खिंच कर चले जाते थे - जूते के अन्दर
एक जादू की तरह
'सोम-चर्म' विद्वेष टालते थे पिता
किन्तु घटता था हर बार यह अनिष्ट योग
या तो खो ही जाते - निरीह जूते
या मैं हो जाता - तैमूर लंग
टखने के पीछे - एड़ियों के ऊपर
अपने पांवों का दर्द - फूलता था छिलता था
सालता था - चलता था कदम-ब-कदम साथ
एक हो जाते तब
जूता दर्द और पांव
अलग ही होती थी वह चाल - फिर भी अपनी
जूता आत्मीय और अन्तरंग हो जाता था
खोने से पहले/बचपन की तरह
भूला नहीं है आज तक

और अब जो पहना है
मुलायम, मंहगा और मजबूत

सुन्दर, चमकीला, भारहीन जूता
पांव से लिपटता है
एक अप्रत्याशित आत्मीयता से उपजे संदेह की तरह
यह कैसा नया जूता है
न चुभता है न काटता है
लगता ही नहीं –
कि जूता है पांव में
यह जूता है या जूते का भ्रम
कहीं यह साजिश तो नहीं है जूते की
मुझे अपने दर्द और जमीन से अलग करने की
मेरी चाल बदलने की
यह कैसा जूता है नया
जिसे पहन कर मैं चलता हूं
पर 'खुड़ाता' नहीं।

पंखों के लिए

प्याले में बची हुई शराब
उलीच दी है
उमड़ते समुद्र पर
और दे दी कामनाएं
खिलते हुए फूलों को
अब क्या बचा है
जिसके कारण डरूं
निरावरण होने से

ईमानदार होने का छद्म
कहने की कोशिश
तरतीब या नयापन
कारीगरी/तराश ?
इस तरह का अब नशा ही नहीं बाकी
बकवास है सब।
न रोशनी नजर में
न ताकत, कलम में

कागज पर तैरती चींटियां हैं
पेट की भूख और
दिमाग की बेचैनी की तरह
चीटियां ही जा सकती हैं
धरती के गर्भ में

पेड़ की जड़ों के पास
जीवित अनुभवों की तरह
जहां छिपे हैं अन्न के भण्डार
वहां अकाल में भी
अब जाती नहीं कविता
ओ सुन्दर चींटियो !
तुम्हारे पख दे दो मुझे
मेरी कविता को - मृत्यु से पहले।

•

इस कठिन समय में

जब लिखने में दोगलापन हो
और दोहराया जाए
हों नहीं वैसे हम
जैसे दिखते हैं
तब कठिन है/बचा लेना
अपने आप को/क्षरित होने से

बैचेन बकरियां तड़पती हुई मिमियाएं
पहाड़ी की ढलान पर/प्यास के मारे
और कविता लिखी जाए
पोखर की पाल पर बैठकर

एक नकली उत्तेजना
असमर्थ। कुछ भी कर पाने में
कठिन – और भी कठिन
लिखना उस समय
यही है लिखने की कसौटी
कौन बचा रहता है इस समय
लिखने में
देखना यह दृश्य
अब नियति है हमारी।

•

गृहणियां

काम में इतना अनासक्त/और सुन्दर
क्या कभी कोई रहा होगा

गोल चेहरे और पतले होठों वाली
दुबली-इकहरी - सफेद ब्लाउज पहने
रंगीन साड़ी के साथ
कि गलकर निर्मल हो चुके जिसके हाथ
कपड़े धोते हुए

दुपहरी में खिल आई हैं वे
छतों पर आंगनों में
गुनगुनी-सुखद, न चुभने वाली
शरद ऋतु की धूप की तरह

किसी ने झुकी हुई पतली गर्दन
और हाथ के अंगूठे की लय पर दम साध
चटाई पर तोड़ दी हैं
एक पिस्ता बड़ियां
किसी-किसी ने
अपनी अंगुलियां ही पिरो दी हैं
स्वेटर की बुनाई में
अपनी अंगड़ाइयां बनाई हैं
[illegible] के बीच में

हां इन्हीं के सपने
सूखने पर शाम को, चादर में पोट बांधकर
उछाल देते हैं हम आकाश में ऊपर
सच! इनके बिना
इनके सपनों के बिना
चमकता नहीं आकाश
इनके स्वप्न न होते तो
कितनी निविड़ अंधकारमय होती
रचना संसार की काल रात्रि।

किले पर चांद

एक

चन्द्रहास उछाल दी
युद्ध से लौटे विजयोन्मत्त योद्धा ने
लपक कर अपने बच्चे को गोद में लेते हुए
चूमा उसे दोनों बाहों में भरकर
ठहर गई बस इतनी सी देर – चन्द्रहास!
दुर्ग की प्राचीर पर
लुप्त होने से पहले
अन्तरिक्ष में।

दो

निर्जन अटारी में
आहट हुई जग
पीछे घूमी पद्मिनी -
दर्पण में छवि देखती हुई
चेहरा पूरा बाहर हो गया प्रतिबिम्ब का
एक आंख की पुतली बची बस जरा
कांच की किनार के निकट/बांक
सी पड़ी बांक
नीलाम्बर ने अपने हृदय में टांक ली।

•

प्रायोजित लोकोत्सव

वह एक अंधेरी गुफा है
जिसकी छत पर नकली घास, फूल-पौधे उगे हैं
जंगल से काट कर लाया गया है
एक आदिवासी का चेहरा/जो अनुष्ठान में सजा है
मदिरा के गिलास में तैरते बर्फ के टुकड़े की तरह

अंधविश्वासी कबीले की जादूगरनी
फूंक मारकर बुदबुदाती है
रोशनियां तैरती हैं हवा में
सिहर उठते हैं/सर्द अहसासों से भरे
गहरे प्रसाधन में ढंके चेहरे
आध्यात्म में जाते हुए
गम्भीर होने की कोशिश कितनी अलौकिक है
कौन किसके पक्ष में है
जानता है, जानता है 'जाणतेर'
वह अपने अनुभव की दरांती को उस्तरे की तरह
इस्तेमाल करता है/शिष्यों को दीक्षित करते समय
मूंडते हुए

खुशहाली का कवि बीमार है
उसे खबर नहीं है बाकी लोगों के दर्द की
सिवा अपने
गुम होती हुई सर्द जुबान का मुहावरा है वह।

•

बूढ़ा मछुआरा

क्या बूढ़े आदमी ने सब कुछ देख लिया है
सब कुछ खा-पी, पहन लिया है
नहीं-
उसने जैसा मिला खाया
वक्त पर जो मिला पहन लिया
जितना हो सका फिरा
सब जगह नहीं जा सकता था - बूढ़ा मछुआरा
समन्दर बहुत बड़ा था
धूप ऊपर जाती रही
वह पेड़ से नीचे उतरता गया
उसने जाल समेट लिया है
तम्बू लपेट कर चल पड़ेगा
वह हारा नहीं-
थक गया है
थोड़ा।

•

वरण

एक बैचेनी
जो सिर्फ भाषा में ही नहीं है
अपने अन्दर से आती हुई
जिसे तोड़ कर फट पड़ना चाहता हूं
पकड़ नहीं पा रहा हूं
जैसा कि होता है – मरने के बाद
लोग जानते हैं – छूते हैं, देखते हैं
तलाश करते हैं इसे
अपने खोए हुए बच्चे की शकल से मिलान करते हुए।

काश! कि मैं मर सकता
आज,
अभी, इसी वक्त
जीवन में न सही
कविता में ही।

•

घोड़ा और खुर

सिकन्दर ने कहा - "हम तो खड़ताल में हैं
हमें हड़ताल से क्या
झण्डे उठाएंगे, तख्ते लगाएंगे
थम्भे गाड़ेंगे, भोंपू बजाएंगे
जुलूस में जाएंगे
दारु पिएंगे
घर आएंगे - सो जाएंगे
हड़ताल की है -
कागज की लुगदी के बबुओं ने"
"इस वक्त बाजार में
सब्जी मंहगी है और दूध पतला है
चरित्रवान लोगों का भी"
"भूखों मरते हैं जो लोग
ठण्ड से ठिठुरते हैं
ये कहां हैं - जो ठेला भी नहीं खींच पाते"
तांगेवाले का घोड़ा बेहतर है जिनसे
ये कब करेंगे हड़ताल - सिकन्दर ने पूछा

फटा हुआ ढोल है रे यह
कब तक बजेगा - ज्यादा से ज्यादा कब तक
कब करेंगे हड़ताल पसीने के बुदबुदे
कब मरेंगे ये!

अब कौन आएगा मसीहा
हमारी 'छान' में बीड़ी लेकर
धम-धम करता

ओ! अस्त होते तारे!
नज़ूमी होता मैं तो बहुत कुछ कहता
नहीं हूं तो भी जानता हूं
बहुत नहीं है रात बाकी
अब देर सुबह होने में
घोड़ा खूंटे से बंधा है
पर खुर फटकार रहा है।

•

चरित्र

ये जो चरित्र है – दूध सा
संदिग्ध है
एक बूंद तिक्तता से चिथड़े-चिथड़े हो जाएगा
दूध के धुले हैं जो लोग
वे पानी से भी मिले रहना चाहते हैं
और खोए से भी

जग में निर्मल जल है केवल
सदा सुहागन धरती जिससे
जल न हो जग में
तो दूध भी क्या होगा।

•

बिजली का कारखाना

बिजली यूं ही नहीं बनती
सारा सत्त खींच लेती है।
चीजों में सत्त कहां से आता है ?
जो लोग नहीं जानते वे कहां जाते हैं
कहां रहते हैं ? मर जाते हैं

बिजली का कारखाना लगने पर
मरे हुए लोगों के कस्बे में ट्रक दौड़ते हैं
नींद की सड़कों पर
बचे हुए लोग-जो जगे होते हैं
अपने ही घर को तकते हैं
सराय की तरह

अब कहां ले जाकर धरी जाएगी यह गठरी
जिसका घूमती हुई धरती पर
सिरहाना लगाते हैं हम।

•

दो

नहीं जाना चाहिए
किसी नाटक के भावुक दृश्य के अभिनेता की तरह
अपनी ही बोली के कवि के पास
किसी लरज़िश या थरथराहट की उम्मीद लेकर
गीली मिट्टी का खिलौना
सूख कर खरखरा हो चुका होगा।

तीन

यहीं रहना बेहतर है
यह समय है यहीं खड़े रहने का
यह समय है - वर्षा से पहले का
यह समय है जलावन इकट्ठा करने का
चाक घुमाने का/आग जलाने का
आवा पकाने का
यह समय नहीं है वापस लौटने का
यह समय है - वर्षा से पहले का

पानी जब होगा
उसे सहेजने को पात्र भी तो चाहिए।

•

चित्रकार

जब उसने कहा – पेड़ की सुन्दरता का वर्णन करो
या रंगों के बारे में बताओ ?
मैं थकने लगा काव्याभ्यास में
तब और भी
जब खुलने लगी अन्दर की अनेक परतें
वह अकेला ही, खड़ा था – कई रंग लिए हुए
उस दृश्यावलोक में
मैं उन्हें नाम देने की कोशिश कर सकता था
यदि उनमें से कुछ को जानता होता
उनके लिए – जिन्होंने उन्हें पहले से देख रखा था।
तब क्या नया था।
और बचा भी क्या है
जिसका अब तक वर्णन न हो चुका हो
पुनरावृत्ति।
एक थके हुए बढ़ई की तरह
पहले से गढ़ी हुई आकृतियों की – नामावली की
अगर खो न गया होता
अव्यक्त रूपाकृतियों में।
सृजन के लिए।

•

बच्चे कर रहे हैं प्रतीक्षा
पिता के घर लौटने की
पिता। युद्ध समाप्त होने की
युद्ध कब समाप्त होगा ?
यह कौन जानता है ?

•

अम्बिकादत्त

जन्म : अन्ता, जिला बारां, राजस्थान में।

शिक्षा : बी.एस.सी. (आधी), बी.ए. बी.एड.

हिन्दी, हाड़ौती (राजस्थानी) में लेखन।
खासतौर पर कविताएं।

हिन्दी की लगभग सभी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं प्रकाशित। आकाशवाणी-दूरदर्शन से भी प्रसारित।

दो कविता संग्रह, "लोग जहां खड़े हैं" (हिन्दी, 1987) तथा "सौरम का चितराम " (राजस्थानी, 1990) प्रकाशित।

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा प्रकाशित प्रतिनिधि कविताओं के सकलन "रेत पर नंगे पांव" में कविताएं।

राजस्थान पत्रिका, जयपुर द्वारा "कारखाना उजड़ जाने के बाद" कविता के लिए पत्रिका सृजनात्मक पुरस्कार-1998 से सम्मानित।

'सौरम का चितराम" के लिए गौरीशंकर कमलेश स्मृति पुरस्कार-1994 से सम्मानित।

कुछ कविताओं का अंग्रेजी व पंजाबी में अनुवाद प्रकाशित।

सम्प्रति : राजस्थान तहसीलदार सेवा में सेवारत।

संपर्क : बी-2, II न्यू कॉलोनी, गुमानपुरा, कोटा-324 007

दूरभाष : 0744-322922

ISBN-81-87697-35-0